18. अलोपी

• महादेवी वर्मा

लेखिका परिचय –

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई० में फर्रुखाबाद में एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ। आपने 1933 में संस्कृत में एम०ए० उत्तीर्ण की और उसी वर्ष प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रिंसिपल नियुक्त हो गईं। आपकी माता हिंदी की विदुषी थीं। तुलसी, सूर और मीरा की रचनाओं का परिचय आपको सर्वप्रथम माता से ही प्राप्त हुआ। छायावादी काव्य धारा के चार स्तंभों प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा का हिंदी साहित्य में विशेष स्थान है।

आपने प्रारंभिक कविताएँ ब्रज भाषा में लिखीं किंतु शीघ्र ही श्री मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली की कविताओं से प्रभावित होकर, आपने भी खड़ी बोली को ही अपनी कविताओं का माध्यम बनाया। आधुनिक हिंदी कवियों में आपका प्रमुख स्थान है। यद्यपि आपकी साहित्यिक प्रसिद्धि का कारण आपकी कविता ही है किंतु आपका गद्य लेखन पर भी पूरा अधिकार है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' नाम से आपके संस्मरण और रेखाचित्र प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त नारी-समस्याओं पर 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक निबंधों का संग्रह तथा अन्य अनेक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके कविता संग्रह हैं –'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य गीत'।

महादेवी सामाजिक आदर्शों और लोक-मंगल के प्रति पूर्ण जागरूक रही हैं। उनका चिंतन भारतीय चिंतनधारा का महत्त्वपूर्ण विकास है। जीवन के साधारण प्रसंगों को शब्द चित्रों में अंकित कर देना उनकी विशेषता है। मानवीय सहानुभूति और संवेगों की गहनता का चित्र अंकित करने में उनका कोई सानी नहीं है।

पाठ परिचय –

यह पाठ अलोपीदेवी द्वारा प्रदत्त, नेत्रहीन किंतु स्वाभिमानी पुरुष अलोपी का संस्मरण है। यही नहीं – अभाव या दीन-हीन स्थिति, आर्थिक दृष्टि से भी दीन पिता काछी की मृत्यु ने अलोपी के पुरुषार्थ और मानवीय संवेदना को जगा दिया वह पूरी सजगता और ईमानदारी से कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ा। अंधता की अवहेलना कर मनोयोगपूर्वक जीवन-कर्त्तव्य की राह पर बढ़ ही रहा था कि पत्नी की चतुराई और छलावे ने उसके स्वर्ग को ढहा दिया। विवश अलोपी असमय ही मृत्यु की खोह में समा गया। नियति के व्यंग्य से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाले अलोपी की जीवन-यात्रा की सार्थकता पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न अंकित करता हुआ यह संस्मरण आत्मा के सौंदर्य की व्याख्या अवश्य करता है।

मूल पाठ –

अंधे अलोपी के घटना-शून्य जीवन में उपयोगिता का एक भी परमाणु है या नहीं, इसकी खोज कोई तत्त्व-वैज्ञानिक ही कर सकेगा। मुझे तो उसकी कथा आँसू भरी दृष्टि की छाया में काँपते हुए दुःख गीत की एक कड़ी-सी लगती रही है।

मैंने उसे कब देखा, यह कहानी भी उसी के समान अपनी विचित्रता में करुण है।

वैशाख नए गायक के समान अपनी अग्निवीणा पर एक से एक लम्बा आलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था। मेरा छोटा घर गर्मी की दृष्टि से कुम्हार का देहाती आवाँ बन रहा था और हवा से खुलते, बंद होते खिड़की-दरवाजों के कोलाहल के कारण आधुनिक कारखाने की भ्रांति उत्पन्न करता था। मैं इस मुखर ज्वाला के उपयुक्त ही काम कर रही थी अर्थात् उत्तर-पुस्तकों में अंधाधुंध भरे ज्ञान-अज्ञान की राशि को विवेक में तपा-तपाकर ज्ञान-कणों का मूल्य निश्चित कर रही थी। हम लोग भी कैसे विचित्र हैं। जब बर्फ, खस की टट्टी, बिजली के पंखे आदि अनेक कृत्रिम उपचारों से भी हम अपनी बुद्धि का पिघलना नहीं रोक सकते, तब दूसरों के ज्ञान की परीक्षा लेने बैठे हैं। यदि मस्तिष्क, ठीक स्थिति में हो, तो कदाचित् हम न्याय के लिए ऐसे अन्यान्यपरायण हो ही न सकें।

तीसरा पहर थके यात्री के समान मानो ठहर-ठहर कर बढ़ा चला आ रहा था और मेरे हाथ तथा दृष्टि में पृष्ठों पर दौड़ने की प्रतियोगिता चल रही थी। ऐसे अवसर पर किसी का भी आना हमारी अधीरता में झल्लाहट का पुट मिला देता है, उस पर यदि आगन्तुक के कंठस्वर में हमें उसके भिखारीपन का आभास मिल गया हो, तब तो कहना ही क्या। नौकर-चाकर सब अपनी–अपनी कोठरियों के अस्वाभाविक अंधकार को और भी सघन करके स्वेच्छा से उलूक होने का सुख भोग रहे हैं। सोचा, न उठूँ। पुकारने वाले को असमय आने का दंड सहना चाहिए, परंतु भिखारी के संबंध में मेरे संस्कार कुछ ऐसी ही तर्कहीनता तक पहुँच चुके हैं, जहाँ से अंधविश्वास की सीमा–रेखा दूर नहीं रह जाती। बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या- उपव्याख्याओं के साथ इस व्यवहार-सूत्र को समझाती रही है कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं हो सकती, जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है, वरन् उस समय होती है, जब कोई भूला–भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिए हाथ फैला देता है।

माँ के जीवन-काल में ऐसे अनेक अवसर आए होंगे, जब मुझे सीखा हुआ पाठ स्मरण नहीं रहा; पर जब से अप्रसन्न होने की सीमा के पार पहुँच चुकी हूँ, तब से मुझे भूला हुआ भी सारी सूक्ष्म व्याख्याओं के साथ याद आने लगा है।

भिखारी की आवश्यकता से अधिक मुझे अपनी शिष्टता की परीक्षा का ध्यान था। निरुपाय उठना पड़ा। कई बार पुकारने के उपरांत पुकारने वाली मूर्तियाँ पत्तों में दरिद्र नीम ही से छाया याचना करने चल पड़ी थी। ए, ओ आदि अपरिचय-बोधक संज्ञा में अपना आमंत्रण पहचान कर जब वे लौटीं, तब उनके प्रति पग पर मेरा कौतूहल पैर बढ़ाने लगा। चर्म के आवरण में से अपना विद्रोह प्रकट करने वाले अस्थि-पंजर के लिए फटे लंबे कुर्ते को दोहरा कारागार बनाए 6-7 वर्ष का बालक लाठी को एक ओर से थामे आगे-आगे आ रहा था और ऊँची धोती और मैली बंडी में अपने कंकाल को यथासंभव मुक्ति दिए एक अंधा लाठी के दूसरे छोर के सहारे टओल-टटोल कर बढ़ते हुए पैरों से उसका अनुसरण कर रहा था। खेत में लकड़ी पर औंधाई हुई मटकी जैसे सिर को हिलाते हुए प्रौढ़ बालक ने वृद्ध युवक को आगे कर न जाने क्या बताया, पर जब उसने ऊपर मुख उठाकर नमस्कार किया, तब ऐसा जान पड़ा मानो नमस्कार का लक्ष्य खजूर का पेड़ है।

जीवन में पहली बार मेरा मन प्रश्न के उपयुक्त शब्दों की खोज में भटक कर उस नेत्रहीन के सामने मूक-सा रह गया।

धूल के रंग के कपड़े और धूल भरे पैर तो थे ही, उस पर उसके छोटे-छोटे बालों, चपटे-से माथे, शिथिल पलकों की विरल बरुनियों, बिखरी-सी भौंहों, सूखे, पतले ओठों और कुछ ऊपर उठी हुई ठुड्डी पर राह की गर्द की एक परत इस तरह जम गई थी कि वह आधे सूखे क्ले मॉडल के अतिरिक्त और कुछ लगता ही न था। दृष्टि के आलोक से शून्य छोटी—छोटी आँखें कच्चे काँच की मैली गोलियों के समान चमकहीन थीं; जिनसे उस शरीर की निर्जीव मूर्तिमत्ता की भ्रांति और भी गहरी हो जाती थी।

कदाचित् इसी कारण उसके कंठ-स्वर ने मुझे अज्ञात-भाव से चौंका दिया। इस वर्ष का जीवन खुली पुस्तक-जैसा रहता है, अतः महान् ही नहीं, तुच्छतम आवश्यकता के अवसर पर भी उसकी कथा आदि से अंत तक सुना देना सहज हो जाता है। इसके विपरीत हमारा जटिल-से-जटिलतम होता हुआ अन्तर्जगत् और कृत्रिम बनता हुआ जीवन ऐसी स्थिति उत्पन्न किए बिना नहीं रहता, जिसमें बाहर के बगुलेपन को भीतर की सड़ी-गली मछलियों से सफेदी मिलने लगती है। इसी से हमारी तारतम्यहीन कथा अधिकाधिक अकथनीय बनती जाती है और सुख-दुःख की सरल मार्मिकता निर्जीव होने लगती है। हम सहज-भाव से अपनी उलझी कहानी कह नहीं सकते। अतः जब कहने बैठते हैं, तब कल्पना का एक-एक तार सत्य हो अनेक झंकारों की भ्रांति उत्पन्न करके उसे और अधिक उलझाने लगता है।

अंधे अलोपी की कथा में न मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ हाथ लगीं और न समस्याओं की भूलभूलैया प्राप्त हुईं। हाँ, उसकी दैन्य भरी वाचालता से पता चला कि चक्षु के अभाव की पूर्ति उसकी रसना ने कर ली है और इस प्रकार पंच ज्ञानेन्द्रियों में चाहे ज्ञान का उचित विभाजन न हो सका; पर उसके परिमाण का संतुलन नहीं बिगड़ा।

उसका पिता काछी कुलावतंस रहा, पर बहुत दिनों तक अपने भावी वंशधर की प्रतीक्षा करने के उपरांत उसे याचक के रूप में अलोपीदेवी के द्वार पर उपस्थित होना पड़ा। अलोपीदेवी कदाचित् उस उदार सूम के समान थीं जो अपने दानी होने की ख्याति के लिए दान करता है, याचक की आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं। उनके मंदिर से एक अखंडित मनुष्य-मूर्ति भी न निकल सकी। एक पुत्र दिया, वह भी नेत्रहीन। माँ-बाप ने उसके दान को उन्हीं के चरणों पर फेंक आने की कृतघ्नता तो नहीं दिखाई; पर उसकी कृपणता की घोषणा कर अन्य याचकों को सावधान करने के लिए उसका नाम रख दिया अलोपीदीन।

वह अलोपीदीन अब 23 वर्ष का हो चुका है और काछी पिता अंधे पुत्र से पितृ-ऋण का ब्याज-मात्र चुका कर मूल को अपनी सेवा से चुकाने के लिए पितरों के दरबार में चला गया है। माँ तरकारियाँ लेकर फेरी लगाती हैं; पर पुत्र को अच्छा नहीं लगता कि जवान आदमी बैठा रहे और बुढ़िया मर-मर कर कमाए। इसी से शाक-तरकारियों के तत्त्ववेत्ता ताऊ से यहाँ की चर्चा सुन, वह काम की खोज में निकल पड़ा है। ऐसे आश्चर्य से मेरा कभी साक्षात् नहीं हुआ था। जीवन से अनजान किशोरों की संख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उँगलियों के पोर सिलाई करते-करते छलनी हो चुके हैं। कुलवधुओं के समान आँसू पीने वाले युवकों का अभाव नहीं; जिनका पौरुष न दरिद्र पिता का सब कुछ छीन लेने में कुंठित हो जाता है और न भिक्षावृत्ति से मूर्च्छित। अपनी पराजय को विजय मानने वाले ऐसे पुरुषों से भी समाज शून्य नहीं, जो छोटे बच्चों को छोड़कर दिन-दिन भर परिश्रम करने वाली पत्नियों के उपार्जित पैसों से सिनेमा-घरों की शोभा बढ़ा आते हैं।

साधारणतः आज के पुरुष का पुरुषार्थ विलाप है। जितने प्रकार से, जितनी भाव-भंगिमा के साथ;

जितने स्वरों में वह अपने निराश जीवन का मर्सिया गा सके, अपनी असमर्थता का स्यापा कर सके उतना ही वह स्तुत्य है और उतना ही अधिक पुरुष नाम के उपयुक्त है।

अंधी आँखों को आकाश की ओर उठाकर अपने पुरुषार्थ की दोहाई देने वाले अलोपी को ऐसी परंपरा के न्यायालय में प्राण-दण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सकता था।

कुछ प्रकृतिस्थ होकर मैंने प्रश्न किया –'तुम यहाँ कौन-सा काम कर सकते हो ? अलोपी पहले से ही सब सोच-समझकर आया था – यह देहात के खेतों से सस्ती और अच्छी तरकारियाँ लाएगा – मेरे लिए और छात्रावास की विद्यार्थिनियों के लिए।

अपने जीवनव्यापी अंधेरेपन में वह ऐसा व्यवसाय में उलझा हुआ कर्त्तव्य किस प्रकार सँभाल सकेगा, यह पूछने का अवकाश न देकर अलोपी ने अपने फुफेरे भाई रग्घू की ओर संकेतकर बताया कि उन दोनों के सम्मिलित पुरुषार्थ से कठिनतम कार्य भी संभव होते रहे हैं।

प्रस्ताव अभूतपूर्व था; पर मैं भी कुछ कम विचित्र नहीं, इसी से रग्घू और अलोपी अपने दुर्बल कंधों पर कर्त्तव्य का गुरु–भार लाद कर लौटे।

दूसरे दिन सवेरे ही एक हाथ से रग्घू को लाठी का छोर थामे और दूसरे से सिर पर रखी बड़ी-सी छाबड़ी सँभाले हुए अलोपी, 'मालिक हो! मालिक हो!' पुकारने लगा।

मुझे क्या-क्या पसंद है यह जानने के लिए जब वह अनुनय-विनय करने लगा तब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ी। कुछ तरकारियाँ डॉक्टरों ने मेरे पथ्य की सूची में नहीं रखी हैं और शेष के लिए सदा से यही नियम रहा है कि जो भक्तिन के विवेक को रुचे, वह मुझे स्वीकृत हो। फिर जिसे वर्ष में, कुछ महीने दही पर, कुछ फल पर और कुछ खिचड़ी, दलिया आदि पथ्य पर बिताने पड़ते हों, वह रुचि के संबंध में वीतराग हो ही जाता है। पर अलोपी को निराश न करने के लिए मैंने वह सब ले लिया, जिसे वह मेरे लिए ही लाया था। पैसे देते समय अलोपी ने कहा– वह महीने पर लेगा। जब मैंने अपने भूल जाने की संभावना और हिसाब लिखने की विरक्ति की व्याख्या आरंभ की, तब उसने बहुत विश्वास के साथ समझाया कि वह दस तक पहाड़े और पहली किताब के विद्वान ताऊ की सहायता से मेरा हिसाब ठीक रखेगा। छात्रावास का वहाँ की मेट्रन रखेंगी ही। वहाँ इस युगल मूर्ति को लेकर जो विनोदात्मक कोलाहल मचा, उसके संबंध में 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' कहना ही ठीक होगा; पर दो-चार दिन में ही अलोपी सबकी ममता का पात्र बन गया उसे जो स्वच्छंदता प्राप्त थी, वह दूसरे नौकरों को मिल ही नहीं सकती थी। मेस के लिए आँगन के एक कोने में वह पैर फैलाकर बैठता और तौलकर लाई हुई तरकारी फिर वहाँ के बड़े तराजू पर तौलने लगता। उसका स्पर्श-ज्ञान इतना बढ़ गया था कि लौकी, कद्दू, कटहल आदि को हाथ में लेते ही वह उनका तौल बता देता था। तुलाते–तुलाते वह शाक-तरकारियों के प्रकार और खेतों संबंध में, महराजिन, बारी आदि को न जाने कितना ज्ञातव्य बताता चलता था। प्रायः छोटी बालिकाएँ उसे घेर कर चिड़ियों की तरह चहकती ही रहती थीं। उनके लिए वह अमरूद, बेर आदि भी लाने लगा, जिनके दाम के संबंध में कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। एक दिन जब कॉलेज के फल वाले ने शिकायत की कि अंधा फल लाकर बच्चों को बाँटता है, जिससे उसके व्यापार को हानि पहुँचती है; तब मैने अलोपी से पूछा उसने दाँत से जीभ की नोक दबाकर सिर हिलाते हुए जो उत्तर दिया, उसका भावार्थ था कि दाम उसे मिल जाता है। फिर वह स्कूल के समय तो आता नहीं, अतः फल वाले की उससे क्या हानि हो सकती है।

बालिकाएँ न अलोपी को झूठा ठहरा सकती थीं, न मेरे सामने झूठ बोल सकती थीं; अतः वे मौन रहीं। मेरे अनुचित-उचित संबंधी व्याख्यान के उत्तर में अलोपी ने मैली पिछौरी के छोर से धुँधली आँखें पोंछते–पोंछते बताया कि उसकी एक आठ-नौ-वर्ष की चचेरी बहिन मर चुकी है। इन बालिकाओं के स्वर में उसे बहिन की भ्रांति होने लगती है, इसी से अपनी दरिद्रता के अनुरूप दो-चार अमरूद, बेर, जामुन आदि ले आता है। उसके देहात में ऐसी चीजों का कोई दाम नहीं लेता, फिर वह कैसे जानता कि शहर में ऐसे देना बुरा माना जाता है। दाम देकर खरीदता, तो लेना किसी तरह उचित भी हो सकता था। पर वे फल उसे तरकारियों के साथ घलुए में मिल जाते हैं। इनसे पैसे बनाने की बात सोचकर उसका मन जाने कैसा-कैसा होने लगता है। उन्मुख अलोपी के मुख का भाव देखकर मैं अपने ढपोरशंखी न्याय का महत्त्व समझ गई और तब मेरा मन अपने ऊपर ही खीज उठा। कहना व्यर्थ है कि अलोपी को अपने सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ा। अलोपी के नेत्र नहीं थे, इसी से संभवतः वह न प्रकृति के रौद्र रूप से भयभीत होता था और न उसके सौंदर्य से बहकता था। मूसलाधार वृष्टि जब बर्फ के तूफान की भ्रांति उत्पन्न करती, बिजली जब लपटों के फव्वारे–जैसी लगती और बादलों के गर्जन में जब पर्वतों के बोलने का आभास मिलता, तब रग्घू तो चलते–चलते बाहर से आँखें छिपा लेता, पर भीगे चिथड़े के गुड्डे के समान अलोपी नाक की नोक से चूते हुए पानी की चिंता न कर, भीगी उँगलियों से फिसलती लाठी थामें और हरे खेत के खंड जैसी छाबड़ी सँभाले, इस तरह पाँव रखता, मानों उन्हें आज ही पृथ्वी का पूरा परिचय प्राप्त करना है। एक बार भी कीचड़ में पैर पड़ जाने पर रग्घू की खैर न थी, क्योंकि अलोपी आँख वाले के पथ-प्रदर्शन में ऐसी भूल अक्षम्य समझता था। जब शीत बर्फीले तारों का व्यूह-सा रच देती और पक्षाघात की साँस-जैसी हवा बहती, तब रग्घू पतले कुरते में मिर्गी के रोगी के समान हिलता और दाँत बजाता चलता; पर अलोपी सारी शक्ति से ठिठुरे ओठों के कपाट बंद किए और सर्दी से नीले नाखून और ऐंठी उँगलियों वाले पैरों को तोल-तोलकर रखता हुआ आता। ग्रीष्म में जब धूल ऐसी जान पड़ती, मानों कोई पृथ्वी को पीस-पीस कर उड़ाये दे रहा है और लू जलते हुए व्यक्ति की तरह चीत्कार करती हुई, इस कोने से उस कोने में दौड़ती फिरती, तब हाथ में आँखों पर ओट किए हुए रग्घू के जल्दी-जल्दी उठते हुए पैर मुझे भाड़ में नाचते हुए दानों का स्मरण दिलाते थे। पर अलोपी पलकें मूँदकर आँखों के अंधकार को भीतर ही बंदी बनाता हुआ अपने हर पग को इतनी धीरता से जलती धरती पर रखता था, मानो उसके हृदय का ताप नापता हो। बसंत हो या होली, दशहरा हो या दीवाली, अलोपी के नियम में कोई व्यतिक्रम कभी नहीं देखा गया।

एक बार जब अपनी लम्बी अकर्मण्यता पर लज्जित हमारे हिंदू-मुस्लिम भाई वीरता की प्रतियोगिता में सक्रिय भाग ले रहे थे, तब अलोपी पहले से दुगनी बड़ी डलिया में न जाने क्या-क्या भरे और एक बड़ी गठरी रग्घू की पीठ पर भी लादे, सुनसान रास्ते से आ पहुँचा। उसके दुस्साहस ने मुझे विस्मित न करके क्रोधित कर दिया। 'तुम हृदय के भी अंधे हो, ऐसी अँधेरी गलियों में प्राण देकर कुछ स्वर्ग नहीं पहुँच जाओगे' आदि-आदि स्वागत-वचनों के उत्तर में अलोपी बैंगन-लौकी टटोलने लगा। मेरे आँगन में तरकारियों का टीला निर्मित कर, वह वैसे ही मूक-भाव से छात्रावास की ओर चल दिया। वहाँ से लौटकर जब वह सूखी आँखें पोंछता और ठिठकता-सा सामने आ खड़ा हुआ, तब मेरा क्रोध बरस कर मिट चुका था और मन में ममता की सजलता व्याप्त थी।

मेरे कंठ में आश्वासन का स्वर पहचानकर उसने रुक-रुक कर बताया कि वह दो दिन के लिए

तरकारियाँ ले आया है। मेट्रन से उसे ज्ञात हो गया था कि उनके भंडार-घर के अचार समाप्त हो चुके हैं और बड़ियों में फफूँदी लग गई है। केवल दाल से तो अलोपी जैसे व्यक्ति ही रोटी खा सकते हैं, अतः यह देहात से यह सब खरीद कर बेचता-बेचता यहाँ आ पहुँचा। उस बिना आँखों वाले आदमी को कौन सताएगा; पर जब मेरी आज्ञा नहीं है, तब वह घर से बाहर पैर नहीं रख सकता। अब दो दिन के लिए चिंता नहीं है, फिर तब तक यह झगड़ा समाप्त हो ही जाएगा। अलोपी को ऐसे समय भी रोक रखना संभव नहीं हो सका, क्योंकि बूढ़ी माँ की रक्षा का भार उस पर था।

मैं बरामदे में हूँ या नहीं, यह अलोपी देख न सकता था; पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने आते-जाते उस दिशा में नमस्कार न कर लिया हो।

अनेक बार मैंने खाली डलियों के साथ नीम के नीचे बैठे अलोपी को भक्ति से बहुत मनोयोगपूर्वक बातें करते देखा था। वार्तालाप का विषय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहता था। मुझे करेला अच्छा लगता है या कटहल, कचनार की कली पसंद है या सहजन की फली, मेथी का साग रुचिकर होता है या पालक का, मीठा नींबू, लाभदायक है या संतरा, आदि प्रश्नों पर गंभीरता से वाद-विवाद चलता।

एक बार की घटना अपनी क्षुद्रता में भी मेरे लिए बहुत गुरु है। मैं ज्वर से पीड़ित थी। कई दिनों तक बरामदे को नमस्कार कर अलोपी ने रग्घू से कहा—जान पड़ता है इस बार गुरुजी बहुत गुस्सा हो गई हैं। पहले की तरह कुछ पूछती ही नहीं; पर जब उसे ज्ञात हुआ कि मैं बीमारी के कारण बाहर आ ही नहीं सकती, तब वह बहुत चिंतित हो उठा। दूसरे दिन संदेश मिला कि अलोपी मुझे देखने की आज्ञा चाहता है। उतने कष्ट के समय भी मुझे हँसी आए बिना न रह सकी। अंधा अलोपी असंख्य बार आज्ञा पाकर भी मुझे देखने में समर्थ कैसे हो सकता था। पर अलोपी भीतर आया और नमस्कार कर टओलता-टटोलता देहली के पास बैठ गया। फिर अपनी धुँधली, शून्य आँखों की आर्द्रता बाँह से पोंछकर पिछौरी के एक छोर में लगी गाँठ खोलते हुए उसने अपराधी की मुद्रा से बताया कि वह स्वयं जाकर अलोपी देवी की विभूति लाया है। एक चुटकी जीभ पर रख ली जाय और एक माथे पर लगा ली जाय, तो सब रोग-दोष दूर हो जायगा। कहने की इच्छा हुई – जब देवी तुम्हारा ही पूरा न कर सकीं, तब मेरा क्या करेंगी; पर उनके वरदान की गंभीरता ने मुख से कुछ न निकलने दिया। अलोपीदेवी की दिव्यता प्रमाणित करने के लिए अलोपीदान का कर्त्तव्य में वज्र और ममता में मोम के समान हृदय ही पर्याप्त होना चाहिए। उसके निकट जिसका परिचय स्वर-समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता; उस व्यक्ति के प्रति इतनी सहानुभूति भूलने की वस्तु नहीं।

अलोपी को हमारे यहाँ आए तीसरा वर्ष चल रहा था। उसका कुछ भरा हुआ-सा कंकाल कुरते से सज गया, सिर पर जब-तक साफा सुशोभित होने लगा और ऊँची धोती कुछ नीचे सरक आई। साधारणतः महीने में 70 रु. से कुछ अधिक की ही शाक-तरकारियाँ आती थीं। दाम चुकाकर और रग्घू को कुछ देकर भी अलोपी के पास इतना बच रहता था, जिससे वह सजलता व्याप्त थी। अपनी माँ के साथ सुख से रह सके। और एक दिन तो रग्घू ने हँसते-हँसते बताया कि दादा का रुपया उसकी माई गाड़कर रखने लगी है।

अलोपी के अँधेरे जीवन का उपसंहार भी कम अंधकारमय न हो, इसका समुचित प्रबंध विधाता कर चुका था। एक दिन मेरे निकट बैठकर अपने—आप से संसार—चर्चा करती हुई भक्तिन ने सुनाया अलोपी अपना घर बसा रहा है। मैं इतनी विस्मित हुई कि भक्तिन की कथाओं के प्रति सदा की उपेक्षा भूल कर 'क्या'

कह उठी और तब भक्तिन ने उसी प्रसन्न मुद्रा में मेरी ओर देखा, जिससे भीष्म ने रथ का पहिया ले दौड़ने वाले कृष्ण को देखा होगा। पता चला, उसके कथन का प्रत्येक अक्षर बिना मिलावट का सत्य है।

एक काछिन, जो दो पतियों को मुक्ति दे आई है, अंधे के लिए स्वर्ग की रचना करना चाहती है; पर अलोपी की माँ अपने वरदान में मिले पुत्र को अब फिर दान में देना स्वीकार नहीं करती।

गर्मियों की छुट्टियों के बाद लौट कर सुना कि अलोपी की माँ अलग रहने लगी और नई पत्नी ने आकर घर सँभाल लिया। फिर एक बार उसे देखने का अवसर भी मिला। मझोले कद की सुगठित शरीर वाली प्रौढ़ा थी। देखने में साधारण-सी लगी; पर उसके कंठ में ऐसा लोच और स्वर में ऐसा आत्मीयता भरा निमंत्रण था, जो किसी को भी आकर्षित किए बिना नहीं रहता, और कुछ विशेष चमकदार आँखों में चालाकी के साथ-साथ ऐसी कठोरता झलक जाती थी, जो उस पर विश्वास करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य कर देती थी। अलोपी उसे कंठ–स्वर से ही जानता था। इसी से कदाचित् वह विश्वास कर सका।

रग्घू घर का भेदिया था; इसी से सब जान गए कि उसकी नई भौजी को रुपये की चर्चा के अतिरिक्त और कोई चर्चा नहीं सुहाती। कभी वह जानना चाहती है कि अलोपी ने गाढ़े दिन के लिए कुछ बचा रखा है या नहीं, कभी पूछती है कि उसके पछेली और झुमके किस कोने में गाड़कर रख दिए जाएँ।

अलोपी इस ढहते हुए स्वर्ग में छह महीने रह सका। फिर सुना कि उसकी चतुर पत्नी सब कुछ लेकर उसे माया-पाश से सदा के लिए मुक्ति दे गई है।

वह बेचारा तो कई दिन तक विश्वास ही न कर सका। खुद गड्डे को टओल-टटोल कर देखता और फिर द्वार पर बैठकर उसकी प्रतीक्षा करने लगता है। जब परोपकारी पड़ोसियों ने उसके विश्वास की शिला को युक्तियों की एक-से-एक मर्म भेदी सुरंगों से उड़ा दिया, तब वह बीमार पड़ गया। पर, निरंतर कर्मयोग से दीक्षित पुलिस को यह शुभ समाचार देने की चर्चा चलते ही वह प्रशांत निराशा–भरी दृढ़ता से कहने लगता –'अपनी स्त्री की हुलिया लिखवाकर पकड़ मँगाना नीच का काम है।' अलोपी कुछ अच्छा होने पर आने लगा; पर उसमें पहले जैसा जीवन नहीं रह गया था। पैर-घसीट कर चलता, हाथ से लाठी छूट-छूट पड़ती। एक बार मेरे बरामदे की दिशा में नमस्कार करते समय छाबड़ी नीचे आ रही। अलोपी के सब साहस, संपूर्ण उत्साह और समस्त आत्मविश्वास को संसार का एक विश्वासघात निगल गया है, यह सत्य होने पर भी कल्पना-जैसा जान पड़ता है।

अंधे का दुःख गूँगा होकर आया था, अतः सांत्वना देने वाले उसके हृदय तक पहुँचने का मार्ग ही न पा सकते थे। मेरे बोलते ही वह लज्जा से इस तरह सिकुड़ जाता, मानों उसके चारों ओर ओले बरस रहे हों, इसी से विशेष कुछ कह-सुनकर उसका संकोचजनित कष्ट बढ़ाना जैसे उचित न समझा। पर, अपने अपराध से अनजान और अकारण दंड की कठोरता से अवाक् बालक-जैसे अलोपी के चारों ओर जो अँधेरी छाया घिर रही थी, उसने मुझे चिंतित कर दिया था।

उसकी माँ बड़ी मानता से प्राप्त अंधे पुत्र का सब अपराध भूल गई थी, पर हठी पुत्र ने अपने-आपको क्षमा नहीं किया, अतः उन दोनों का वह करुण-मधुर अतीत फिर न लौट सका।

मैं दशहरे का अवकाश घर ही पर बिता रही थी। अलोपी एक दिन तरकारियाँ देकर सन्ध्या समय तक मेस ही में बैठा रहा। कभी बड़ी ममता से तराजू को छूकर देखता, कभी बड़े स्नेह से पूसी की धनुषाकार

पीठ को सहलाता और कभी विनोद से छोटी बालिकाओं को चिढ़ाने लगता। फिर मेरी कुत्ती फ्लोरा को अपनी बिछौरी में बँधे मुरमुरे देकर, हिरणी सोना को मूली की पत्तियाँ खिलाकर और मेरे बरामदे को नमस्कार कर जो गया, तो कभी नहीं लौटा। तीसरे दिन रोने से सूजी आँखों वाले रग्घू ने समाचार दिया कि उसका अंधा दादा बिना उसे साथ लिए ही न जाने किस अज्ञात लोक की महायात्रा पर चल पड़ा।

ऐसे ही अचानक तो वह यहाँ भी आ पहुँचा इसी से विश्वास होता है कि वह बिना भटके ही अपने गन्तव्य तक पहुँच जाएगा।

बालक रग्घू के लिए दूसरे काम का प्रबंध कर मैंने अलोपी के शेष स्मारक पर विस्मृति की यवनिका डाल दी है; पर आज भी देहली की ओर देखते ही मेरी दृष्टि मानों एक छायामूर्ति में पूंजीभूत होने लगती है। फिर धीरे–धीरे उस छाया का मुख स्पष्ट हो चलता है। उसमें मुझे कच्चे काँच की गोलियाँ जैसी निष्प्रभ आँखें भी दिखाई पड़ती हैं और पिचके गालों पर सूखे आँसुओं की रेखा का आभास भी मिलने लगता है। तब मैं आँख मल-मल कर सोचती हूँ – नियति के व्यंग्य से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मँडराता रहेगा ?

•••

शब्दार्थ –

घटना–शून्य – बिना परिवर्तन के, घटनाओं रहित / अग्निवीणा–सूर्यताप के बढ़ने का संकेत / आवाँ–मिट्टी के बर्तन पकाने का भट्टा / कृत्रिम–बनावटी / अन्यान्यपरायण–अन्य के प्रति निष्ठावान / याचक–भिखारी / कुलावतंस–कुल का आभूषण / मर्सिया–शोकगीत / पथ्य–स्वास्थ्य लाभ के लिए उपयोगी आहार / काछी–सब्जी बेचने वाला / पिछौरी–पीछे से (कंधों पर) ओढ़ने का वस्त्र / यवनिका–परदा / पूंजीभूत–एकत्र होकर एक विशेष अवस्था को प्राप्त /

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. किसी भिखारी के प्रति सामान्य प्रतिक्रिया होती है –

(क) क्रोध (ख) उपेक्षा

(ग) करुणा (घ) श्रद्धा ( )

2. 'अंधी आँखों को आकाश की ओर उठाकर अपने पुरुषार्थ की दोहाई देने वाले अलोपी को ऐसी परंपरा के न्यायालय में प्राण दण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सकता था।' लेखिका ऐसा क्यों मानती हैं ?

(क) क्योंकि अलोपी के नेत्र नहीं थे और पुरुष होकर भी वह कुछ नहीं कर सकता था।

(ख) वह नेत्र न होने के बावजूद कार्य करना चाहता था।

(ग) उसने अंधी आँखों को आकाश की ओर उठा कर अपनी असमर्थता प्रकट की थी।

(घ) वह जीवन से निराश होकर उनके पास आया था। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. अलोपी के चक्षु के अभाव की पूर्ति किसने की ?

2. 'अलोपी देवी कदाचित् उस सूम के समान थीं, जो अपने दानी होने की ख्याति के लिए दान करता है।' इन पंक्तियों द्वारा दानदाता की किस मनोभावना पर व्यंग्य किया गया है ?

3. 'तुम कौन–सा काम कर सकते हो ?' पूछे जाने पर अलोपी ने अपने किस कार्य का प्रस्ताव रखा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. भिखारी का स्वर सुनकर लेखिका की क्या प्रतिक्रिया थी ?

2. 'हम सहज भाव से अपनी उलझी कहानी नहीं कर सकते।' दीनहीन वर्ग और सम्पन्न वर्ग की जीवन कथा का अन्तर स्पष्ट करते हुए लेखिका के क्या विचार हैं ?

3. 'आज के पुरुष का पुरुषार्थ विलाप है।' लेखिका ने किस आशय से ऐसा कहा है ?

4. 'गिरा अनयन, नयन बिनुबानी' लेखिका इन शब्दों को किस संदर्भ में ठीक मानती है ?

5. लेखिका को यह विश्वास क्यों है कि अलोपी बिना भटके अपने गन्तव्य तक पहुँच जाएगा ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. नेत्रहीन अलोपी न प्रकृति के रौद्र रूप से भयभीत होता था न उसके सौंदर्य से बहकता था। प्रत्येक स्थिति में दृढ़ता एवं धैर्य से काम में संलग्न अलोपी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

2. अलोपीदेवी की दिव्यता प्रमाणित करने के लिए अलोपी ने क्या किया ?

3. 'अंधे का दुःख गूंगा होकर आया था। अतः सांत्वना देने वाले उसके हृदय तक पहुँचने का मार्ग ही न पा सकते थे।' पंक्तियों का क्या आशय है ?

4. अपने अपराध से अनजान और अकारण दंड की कठोरता से अवाक् बालक-जैसे अलोपी के चारों ओर जो अंधेरी छाया घिर रही थी, उसने मुझे चिंतित कर दिया था।' अलोपी में आए इस परिवर्तन का क्या कारण था ?

5. संस्मरण में से चित्रमयी भाषा के प्रयोग के अंश संकलित कीजिए।

6. पाठ में आए निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

   (क) इस वर्ष का जीवन खुली.....उसे और अधिक उलझाने लगता है।

   (ख) एक बार की घटना अपनी क्षुद्रता .....अलोपी देवी की विभूति लाया है।

•••